अध्याय–6

हबीब तनवीर के नाटकों का शिल्प तथा रचना विधान

(vi) कथावस्तु का नियोजन

(vii) चरित्रों की उद्‌भावना

(viii) संवादों की नाटकीयता

(ix) गीतों का प्रयोजन

(x) भाषा की विशिष्टता

किसी भी नाटक के सफल प्रदर्शन के लिए रंगमंच एक नितान्त आवश्यक कड़ी है। रंगमंच के बिना नाटक का कोई औचित्य नहीं। नाटक समाज के लिए लिखे जाते हैं और नाटक के उद्देश्य को समाज तक संप्रेषित करने के लिए रंगमंच की आवश्यकता होती है। रंगमंच के द्वारा ही कोई भी नाटककार अपने मंतव्य को लोगों तक पहुंचाने में सफल होता है, जिसमें अभिनेता, कलाकार तथा शिल्पी उनकी सहायता करते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि नाटक अपने मंचन के द्वारा ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। नाटक के संबंध में नाट्यालोचक गोविन्द चातक ने लिखा है- ''साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, उपन्यास आदि का संप्रेषण मुख्यतः आज मुद्रण के द्वारा होता है। किंतु जहां तक नाटक का सवाल है, उसके संप्रेषण का अपना एक अलग ढंग है जो अन्य विधाओं से बिलकुल भिन्न है। नाटक रंगमंच के माध्यम से ही संप्रेषित होता है। यही वैशिष्ट्य उसे अन्य साहित्य विधाओं से अलग कर देता है।''[1]

नाटक, रंगमंच की आत्मा है और उसका धर्म प्रदर्शन है। नाटक की अभिव्यक्ति के लिए रंगमंच का होना आवश्यक है। रंगमंच दो शब्दों के मेल से बना है- रंग+मंच। यहां 'रंग' का मतलब जीवन के विविध क्रिया व्यापार अर्थात हर्ष, विषाद, शोक आदि है। 'मंच' का मतलब उस स्थान विशेष से होता है जहां जीवन के विविध क्रिया-व्यापारों का प्रस्तुतिकरण हो। अंग्रेजी में इसके पर्याय के रूप में दो शब्द प्रचलित हैं- स्टेज और थियेटर। 'स्टेज' शब्द रंगशाला के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे रंगमंच के दृश्य एवं स्थूल पक्ष की अभिव्यंजना होती है। भले ही बाहर से रंगमंच का स्थूल रूप ही झलकता हो, परन्तु उसका आंतरिक रूप जटिल होने के साथ-साथ सूक्ष्म भी है। रंगमंच का जो बाह्य स्थूल रूप है, वह उस जटिल एवं सूक्ष्म रूप को सफल बनाने के लिए एक साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी का 'थियेटर' शब्द रंगमंच के इन दोनों रूपों- स्थूल एवं सूक्ष्म की अभिव्यक्ति करता है। जिसके अन्तर्गत नाट्यकृति और उसके समस्त रंगकर्म, उसकी रूढ़ियां और प्रदर्शन में निहित शिल्प, भाव-बोध और सर्जनात्मक धरातल भी आते हैं।

नाटक में मनुष्य के विविध चरित्र, उनके कर्म, आकांक्षाओं, मनोवृत्तियों और जीवन में उनके प्रभावों एवं परिणामों का चित्रण होता है। जिसे वह समाज के सामने रंगमंच द्वारा प्रस्तुत करता है। नाटक के महत्वपूर्ण अंग निर्देशक और अभिनेता होते हैं। रंग-शिल्पी अभिनेता के अधिक निकट होता है और उसका

1- रंगमंच कला और दृष्टि, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1970, पृ.सं.-22

महत्व अभिनेता तथा निर्देशक से कम नहीं होता। अच्छा से अच्छा नाटक भी अभिनययुक्त रंग-परिकल्पना, रंग-दीपन, परिधान या अलंकरण के बिना सफल नहीं हो सकता।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में लोकनाट्य शैली का प्रयोग रचना विधान की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में किया। फलस्वरूप उनके ज्यादातर नाटक सफल रहे। रंगमंचीय प्रयोग की दृष्टि से हबीब तनवीर की रंग-यात्रा में तीन चरण उभरकर सामने आते हैं। इनकी आरंभिक प्रस्तुतियों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव झलकता है। तदुपरांत 'आगरा बाजार' और 'मिट्टी की गाड़ी' जैसी प्रस्तुतियों में शहरी और लोक रंगमंच का संगम दिखाई देता है। सत्तर के दशक के बाद इनकी प्रस्तुतियों में संस्कृत नाट्य परंपरा, छत्तीसगढ़ी नाचा शैली और पश्चिम के रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। हबीब तनवीर के नाटकों में भिन्न-भिन्न शैलियों का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसके बारे में हबीब तनवीर कहते हैं कि ''संस्कृत के मुख्य नाटक दिल्ली में रहकर पढ़े और ब्रेश्ट के नाटक लंदन में रहकर। ये दो महान नाट्य धाराएं- एक प्राचीन हिन्दुस्तान की और दूसरी यूरोप की- इन दोनों ने मेरे दिल में ऐसी गहरी छाप डाल दी कि मैं शायद आज तक इन्हीं के जेरेअसर काम कर रहा हूं। ये दो परंपराएं और इनके साथ छत्तीसगढ़ की लोक नाट्य शैली, शायद इन तीन असरात (प्रभावों) ने मेरे थियेटर के मिजाज की तरकीब (रचना) में बराबर-बराबर का भाग लिया है।''[2]

'राडा' में प्रशिक्षण के दौरान हबीब तनवीर ने समझ लिया था कि भाषा में परिवर्तन होने से मनुष्य की गतिविधि, चरित्र, सांस्कृतिक लोकाचार आदि में परिवर्तन आ जाता है। उन्हीं के शब्दों में ''मैंने अनुभव किया कि भाषा का संबंध वाणी से है जो गतिविधि या कार्य व्यापार से जुड़ी है। इसलिए सीधी-सादी बात है कि भाषा का परिवर्तन क्रिया या गतिविधि में भी परिवर्तन ला देता है और चरित्र और सांस्कृतिक लोकाचार में भी। लोग अपने शब्दों को मिलाकर कुछ अस्पष्ट सा उच्चारण करते हैं, जैसा कि स्पेनी लोग करते हैं। हमारी क्रियाएं, हमारा अंग संचालन और हमारे हाथों की गतियां उत्तर भारत से दक्षिण भारत में ही बदल जाती हैं। 'राडा' में सिखाया जाता है कि गति की शुरूआत मेरूदंड से होती है। भारतीय आंगिक गतियां रीढ़ की हड्डी से शुरू नहीं होती।

2- पिछले साठ साल के अभिनय के बारे में कुछ विचार, हबीब तनवीर, नटरंग, खंड-13, अंक-50-52, पृ.सं.-10

हमारी संस्कृति शब्द के सभी अर्थों में कहीं अधिक सक्रिय हैं। मुझे कुछ कक्षाओं में अपने डब्ल्यू के उच्चारण को दुरूस्त करने के लिए बैठना पड़ा। जैसा कि आप जानते हैं, हमारी वृत्ति वी और डब्ल्यू के उच्चारण में कोई अंतर नहीं रखने की है। तो मैं विभागीय अध्यक्ष के पास गया जो शेक्सपीयर पर बहुत बड़े अधिकारी विशेषज्ञ थे। एक आदरणीय वृद्ध सज्जन जो अब तक इंतकाल फरमा चुके होंगे, वे मेरे स्कूल छोड़ने की बात को सुनने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। मैंने कहा कि मैं काफी सीख चुका हूं और मुझे सारा ज्ञान हासिल हो चुका है। अगर मैं और अधिक सीखता हूं, यहां और अधिक रूकता हूं, कुछ और ज्यादा समय व्यतीत करता हूं तो मैं एक अभिनेता के रूप में आडंबरपूर्ण और अस्वाभाविक हो जाऊंगा।"[3] इस तरह हबीब तनवीर अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति गहरे रूप से संबद्ध दिखते हैं। वे यूरोप प्रवास से लौटने के बाद छत्तीसगढ़ी लोक-परम्परा को आत्मसात करते हुए अपने रंगकर्म की शुरूआत करते हैं।

हबीब तनवीर के रंगकर्म में जहां एक ओर परम्परा का आग्रह है, तो वहीं दूसरी ओर आधुनिकता के प्रति खुली व व्यापक दृष्टि भी मौजूद है। उनकी नाट्य दृष्टि वैश्विक थी और जो लोक द्वारा भी प्रकट की जा सकती थी। हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में गीत-संगीत का सुंदर समायोजन किया। उन्होंने चरित्रों की वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया ताकि उनका प्रदर्शन स्वाभाविक लगे। उन्होंने प्रकाश व्यवस्था तथा ध्वनि व्यवस्था में आधुनिक तकनीकों का सहारा लिया। उनके रंगमंच की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उनके नाटक खुले आकाश के नीचे भी आसानी से मंचित हो जाते थे। लोकनाटक के इस प्राचीन परंपरा को उन्होंने आत्मसात किया।

लोक रंगमंच की तरफ नाटककारों के आकृष्ट होने के बारे में जगदीश चन्द्र माथुर की यह टिप्पणी सटीक है कि "परंपराशील नाट्य में भरत के मूल उद्देश्य की पूर्ति, यानी सार्वभौमिक भावों की अभिव्यक्ति, सभी वर्गों के लोगों के चरित्र का प्रदर्शन तथा सर्वसाधारण के हित, सुख और उपदेश का संवर्द्धन होता है। बुद्ध का वचन 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' परंपराशील नाट्य पर निःसंदेह लागू होता है। संस्कृत नाट्य इस ओर जागरूक होते हुए भी उसे पूरा करने में इसलिए असर्मथ रहा कि उसकी पद्धति उद्देश्य के अनुरूप न रह सकी। बात यह है कि जिस समय किसी उद्देश्य का निरूपण किया जाता है, उस समय जो पद्धति और साधन उसकी पूर्ति के लिए यथेष्ट समझे जाते हैं,

---

3- ए लाइफ इन थियेटर, कलावार्ता, अंक-103, संपादक-कमला प्रसाद, भोपाल, पृ.सं.-24

यह जरूरी नहीं कि बाद के युग में भी वही पद्धति और साधन सार्थक रहे। परंपराशील नाट्य की भी परंपराएं बदलती रही हैं। यह लिखित शास्त्र से बंधा नहीं रहा। अतः सार्वभौमिक भावों की अभिव्यक्ति, विभिन्न वर्गों के चरित्र के प्रदर्शन और लोकोपदेश के निरूपण के लिए यह नाट्य बहुजन-संप्रेषण यानी 'मास कम्युनिकेशन' का माध्यम बन गया।"[4]

हबीब तनवीर इसी बहुजन संप्रेषण से अवगत कराने के लिए लोक-परम्परा के बारे में कहते हैं कि "आज भी गांवों में भारत की नाट्य-परम्परा अपने आदिम वैभव और समर्थता के साथ जिन्दा है। इन्हीं ग्रामीण नाट्य मंडलियों को सही मायने में आज बढ़ावा देने की जरूरत है...। शहरी युवक को रंगमंच की प्राचीन परम्पराओं से अवगत कराया जाए, तभी सच्चा भारतीय रंगमंच जो आधुनिक और सार्वभौमिक होने के साथ-साथ अपने रूप में भी भारतीय हो विकसित हो सकेगा।"[5]

हबीब तनवीर का रंगकर्म मूलतः लोक रंगकर्म है। हबीब तनवीर के इस लोककर्म से नाटक विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से अधिक समृद्ध हुआ। चारों ओर के वातावरण, परिस्थिति और आधुनिक चेतना ने हबीब तनवीर को एक नई दृष्टि दी। हबीब तनवीर संस्कृत नाट्य परम्परा से अवगत होने के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्य शैली से भी वाकिफ थे, जो उनके लोक नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। हबीब तनवीर अपने नाटकों के रंग संकेतों के प्रति अधिक सतर्क दिखते हैं, जिसमें वे स्थान, दृश्य विधान, वातावरण के अलावा पात्रों की स्थिति, रंग, आयु, वेशभूषा, उनकी मुद्रा तथा अन्य रंगमंच संबंधी बातों पर विशेष ध्यान देते हैं।

हबीब तनवीर ने नाटकों के संवाद पर खासा ध्यान दिया। उन्होंने नाटकों के संवादों को संक्षिप्त, सजीव, सहज तथा कभी-कभी कलाकारों के विवेक पर परिस्थितियों के अनुसार संवाद गढ़ने की स्वतंत्रता दी। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में अभिनय तथा स्वाभाविकता का भी ध्यान रखा। हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में गीत-संगीत का समायोजन कर उसे प्रभावकारी बनाया और भाषा शैली का विशेष ध्यान रखा। अपने नाटकों में अवसर के

4- परंपराशील नाट्य, जगदीशचन्द्र माथुर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण-1969, पृ.सं.-7-8

5- भारतीय लोक परंपराएं और आधुनिक रंगमंच, कैथरीन हैंसन (अनु. सुरेश बाफना), नटरंग, संपादक-नेमिचन्द्र जैन

अनुकूल भाषा और बोलियों का उन्होंने प्रयोग किया। जैसे 'आगरा बाजार' में उर्दू के साथ सामान्य जन की बोलियों का भी प्रयोग है। हबीब तनवीर ने रूढ़ियों, परम्पराओं, अस्वाभाविकताओं का अन्धानुकरण नहीं किया, बल्कि नवीन प्रभावों, प्रवृत्तियों और नवीन प्रयोगों को ग्रहण करने की उदारता दिखाई। उन्होंने न केवल अपने रंगकर्म द्वारा नाटक और रंगमंच के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा, बल्कि अपने नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व भाषायी अस्मिता को संरक्षित करने का स्तुत्य प्रयास किया। शैलियों के वैविध्य, शिल्पगत प्रयोग, मिथक, प्रतीक, लोक गीत-संगीत और नृत्य को अपनाए जाने की वजह से उनके नाटक लोकग्राही और महत्वपूर्ण बन पड़े।

कथावस्तु का नियोजन

भारतीय नाटककारों का मुख्य उद्देश्य अपने नाटकों द्वारा जीवन का आदर्श चित्र प्रस्तुत करना रहा है। नाटककार अपनी कथावस्तु के द्वारा धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। भारतीय आचार्यों के अनुसार कथावस्तु का उद्देश्य मनुष्य की धार्मिकता, नीतिमत्ता बढ़ाकर उत्तम जीवन निर्वाह की क्षमता लाना तथा आचरण में सुधार करना है। प्राचीन भारतीय नाटक आशावादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिखे गए। पाश्चात्य नाटककार अरस्तू ट्रैजेडी को नाटक मानते हैं। उनके अनुसार ट्रैजेडी में "करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।"[6]

पाश्चात्य विद्वान जीवन की वास्तविक घटनाओं को सामाजिकों के सम्मुख रखकर यह बताना चाहते हैं कि जीवन प्रायः कैसा होता है और किन-किन परिस्थितियों के अन्तर्गत मनुष्य कैसा आचरण करता है। भारतीय नाटक अन्ततः सुखान्त होते हैं। परिस्थितिवश सच्चे व्यक्ति भी जीवन में दुख उठाते हैं, किन्तु अन्त में उन्हें विजय प्राप्त होती है। न्याय, सत्य, धर्म आदि की रक्षा करना ही नाटकों का उद्देश्य होता है और इन विषयों को नाटक की विषय वस्तु में समाहित कर आनन्द और नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती है। वहीं पाश्चात्य नाटककार समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर अपने नाटकों के माध्यम से हमें सचेत करना चाहता है। अरस्तू का कहना है कि ट्रैजेडी मनोवेगों को उत्तेजित नहीं करती, वरन् उनका विरेचन कर सामाजिकों को मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करती है।

नाटक का उद्देश्य उसकी कथावस्तु में ही निहित होता है। यह भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों नाटकों में समान रूप से प्रचलित है। हालांकि उद्देश्य की विभिन्नता उस नाटककार या उस समाज की रुचि पर निर्भर होती है। कोई भी नाटक बगैर किसी उद्देश्य के सिर्फ एक तमाशा भर हो सकता है। नाटककार समाज के सम्मुख कोई विचार, उद्देश्य या समस्या को अपनी कथावस्तु के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिसके अन्तर्गत शिक्षाप्रद नाटक, सामाजिक नाटक, सांस्कृतिक नाटक, धार्मिक नाटक आदि सम्मिलित होता है। इन नाटकों के अलावा मानसिक तृप्ति के लिए विशुद्ध मनोरंजक नाटक भी रचे जाते हैं।

हबीब तनवीर सामाजिक सरोकारों से जुड़े एक प्रतिबद्ध नाटककार हैं।

6- पाश्चात्य साहित्य चिंतन, निर्मला जैन, कुसुम बांठिया, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, संस्करण-1994, पृ.सं.-59

सामाजिक समस्याओं को सामने लाना उनके नाटकों का मूल उद्देश्य रहा है। उन्होंने 'आगरा बाजार' नाटक के द्वारा सांस्कृतिक क्षरण को दिखाया है। साथ-ही-साथ नजीर अकबराबादी के समय के समाज, लोगों और रीति-रिवाजों की दिलचस्प तस्वीर पेश करते हुए सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा समय और समाज के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करते हैं।

समाज की समस्याएं असंख्य हैं। सामाजिक नाटक समाज सुधार के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। इस दृष्टि से हबीब तनवीर का नाटक 'चरनदास चोर' बहुत ही प्रासंगिक है। इस नाटक के कथानक में चोर द्वारा सच बोलने की प्रतिज्ञा लेना एक विस्मयपूर्ण घटना है और जिसके निर्वाह में अन्ततः वह चोर अपनी जान भी गंवा बैठता है। यह नाटक यह दिखलाता है कि समाज में हर जगह चोर और झूठ बोलने वाले मौजूद हैं और इस बुराई के खात्मे से ही स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है।

समाज में व्याप्त बेमेल विवाह को दिखाने के लिए हबीब तनवीर 'गांव के नांव ससुरार मोर नांव दामाद' नाटक की रचना करते है। और इस प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रेम की विजय दिखलाते हैं। हबीब तनवीर ने 'वेणी संहार' का जो कथ्य चुना है, वह मानव समाज की विध्वंसकारी मानसिकता को ही उजागर करता है। यह नाटक हमें बतलाता है कि किस तरह व्यक्ति प्रतिशोध की आग में जलता हुआ विध्वंस का रास्ता अख्तियार कर लेता है। अछूत एवं वर्णभेद की समस्या भारतवर्ष की प्राचीन समस्या रही है। समाज में ढोंगी व पाखंडी व्यक्तियों के आडम्बरपूर्ण व्यवहार ने अछूतों की दुर्गती कर रखी है। अछूत तथा वर्गभेद की समस्या को वे अपने नाटक 'पोंगा पंडित' में उठाते हैं तथा इसके माध्यम से कट्टपंथी ताकतों पर कुठाराघात करते हैं।

'एक औरत हिपेशिया भी थी' नाटक का कथ्य राजनैतिक शोषण और दमन के विरूद्ध अपनी आवाज को बुलंद करने के लिए जनान्दोलन के रास्ते को अख्तियार करने का मार्ग प्रशस्त करता है। सत्ता का स्वार्थ तथा कुटिल मनोविज्ञान की स्थितियां उनके नाटक 'मुद्राराक्षस', 'मिट्टी की गाड़ी' और 'हिरमा की अमर कहानी' में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। 'मुद्राराक्षस' में जहां राजनैतिक स्वार्थ के लिए चाणक्य की कुटिलता देखने को मिलती है, वहीं 'मिट्टी की गाड़ी' में अत्याचार और दमन के विरूद्ध प्रतिरोध। 'हिरमा की अमर कहानी' में राजनीति और नौकरशाही के दमन चक्र को दिखाया गया है। इसमें राजनीति के संदर्भ में कहा गया है कि 'एवरी थिंग इज फेयर इन लव ऐंड पॉलिटिक्स।' दूसरी तरफ नौकरशाही द्वारा न्याय के नाम पर किस प्रकार

मानवीय मूल्यों की बलि दी जाती है, यह भी उजागर किया गया है। इा नाटक में आदिवासी संस्कृति की रक्षा का प्रश्न भी प्रमुखता से उठाया गया है।

हबीब तनवीर ने अपने नाटक की विषयवस्तु में नारी-विमर्श को भी स्थान दिया है। 'बहादुर कलारिन' नाटक में स्त्री को सिर्फ भोग्या न समझने की चेतावनी सी दी गयी है। यह नाटक आज के पतनशील समाज पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करता है। हबीब तनवीर अपनी धरती, अपनी संस्कृति, अपने देश, अपने समय और समाज की रक्षा करने के संकल्प के साथ अपने नाटकों में दिखते हैं। वे राष्ट्रीयता और सामाजिक सुधार की बात करते हैं। 'मिट्टी की गाड़ी' नाटक का यह गीत प्रासंगिक है-

'निर्धन का दुख दूर हो कैसे
जब कोई उसका मीत नहीं
कुछ उसकी मर्यादा इज्जत
कोई जीवन रीत नहीं
मित्र विमुख अपने बेगाने जल बुझते हैं स्वप्न सुहाने
घटते चन्द्र के समान उसकी मौत के पल जाने-पहचाने
आंसू बनकर बहने वाले गीत बिना कोई रीत नहीं
निर्धन का दुख दूर हो कैसे
जब कोई उसका मीत नहीं।'

इस तरह हम देखते हैं कि हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है, बल्कि अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उजागर करते हुए उसे दूर करने का समाधान भी प्रस्तुत करते नजर आते हैं।

चरित्रों की उद्‌भावना

संस्कृत नाट्‌यशास्त्र में नायक अथवा नेता नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व होता है। इसके अंगों के रूप में नाटक के अन्य चरित्र जैसे- नायिका, उपनायक, प्रतिनायक, नायक के सहयोगी, प्रतिनायक के सहयोगी, नायिका की सखी आदि समाहित होते हैं। मनुष्य के मानसिक संघर्ष, एक-दूसरे पात्र से बाह्‌य मुठभेड़ या उसकी परिस्थितियों से संघर्ष चरित्र को अधिक प्रभावित करते हैं। अर्थात् चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। परिस्थितियों पर विचार करते हुए तथा पात्रों के अभिनय का विशेष ज्ञान रखकर ही कोई भी नाटककार चरित्र निर्माण में सफलता प्राप्त कर सकता है। चरित्र के विकास के लिए पात्र का अनुकूल होना भी आवश्यक है।

अरस्तू चरित्र-चित्रण को कथानक के बाद महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उन्होंने चरित्र-चित्रण के छह आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किए। पहला, चरित्र भद्र होना चाहिए। दूसरा, चरित्र में औचित्य हो जिसका संबंध स्वभाव और आचरण से होता है। तीसरा, चरित्र में यथार्थता और जीवन के प्रति सच्चाई स्वीकार करने की शक्ति हो। चौथा, वे चरित्र की स्वाभाविकता और संगति को अनिवार्य मानते हैं। पांचवा, चरित्र का आचरण उसके अपने चरित्र की विशिष्टता के अनुरूप होना चाहिए। छठा, वे चरित्र के गुण-दोषों की स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए भी, जीवन की तुलना में उन्हें अधिक परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करे।

पाश्चात्य देशों में विलियम आर्थर, जी.पी. बेकर, गाल्सवर्दी आदि कुछ विद्वानों ने चरित्र-चित्रण को नाटक का प्रधान तत्व बताया। व्यावहारिक रूप में इस संबंध में नियम भ्रमपूर्ण है, क्योंकि रचयिता कभी कथावस्तु से और कभी पात्रों कें चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करता है और यह उसकी मानसिक परिस्थिति पर निर्भर करता है। कथावस्तु वाले अध्याय में वस्तु के पक्ष में बोलनेवालों के मत उद्धृत हैं।

जी.पी. बेकर चरित्र को प्रधानता देते हुए कहते हैं- "निस्सन्देह नाटक में क्रियाकलाप सामान्य जनता में सबसे अधिक शक्तिशाली तात्कालिक आकर्षण पैदा करता है तथापि अगर एक नाटककार अपनी रुचि के अनुसार प्रेक्षकों को कुछ बताना चाहता है तो कथोपकथन अपरिहार्य है। किन्तु एक नाटक का स्थायी मूल्य उसके चरित्र-चित्रण की अपेक्षा रखता है। चरित्र-चित्रण ध्यान केन्द्रित करता है। नाटक के विषय एवं पात्रों के प्रति दर्शकों में सहानुभूति पैदा करने का चरित्र-चित्रण ही प्रमुख साधन है।"[7] नाटक में दो प्रकार के चरित्र प्रयोग में

लाये जाते है। पहला, वर्गप्रधान और दूसरा, व्यक्ति प्रधान। वर्गगत विशेषताओं से चरित्र में वर्गगत विशेषताओं पर अधिक बल डाला जाता है। जैसे राम और ईसामसीह वर्गगत चरित्र हैं जो कि समाज के उद्धारक, नेता और आदर्श हैं। व्यक्तिवादी चरित्र में व्यक्तिगत विशेषताओं पर जोर दिया जाता है, जो कि आदर्श पर आधारित होते हैं। वस्तुतः चरित्र नाटक का प्रेरक भाग और उसके जीवन से संबद्ध है।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में चरित्रों की जो उद्भावना की, वह अप्रतिम है। 'आगरा बाजार' नाटक में एक चरित्र मदारी के द्वारा हबीब तनवीर हिन्दुस्तान की साझी संस्कृति के साथ-साथ इतिहास का प्रस्तुतिकरण करते हैं। नाटक का प्रत्येक चरित्र अपनी अपनी बातों से उस समय के राजनीतिक और सांस्कृतिक समाज की झलक दिखला जाता है। 'मिट्टी की गाड़ी' का चरित्र शर्विलक किस तरह अन्याय के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करता है, यह इस पंक्ति में समाहित है- 'मैं वीरों और अपनी भुजाओं के पराक्रम से बने- राजा के अपमान से कुपित सेवकों तथा अपनी जाति के लोगों को मित्र आर्यक की मुक्ति के लिए उत्तेजित करता हूं।' इस नाटक के अन्य पात्र भी आज के सामाजिक मूल्यों को चुनौती देते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में चाणक्य आज की राजनीति में व्याप्त कूटनीति का प्रतीक है, जो सत्ता के लिए चक्रव्यूह की रचना करता है। 'गांव के नाव ससुरार मोर नांव दामाद' नाटक में मालती का पिता लालच से वशीभूत होकर अपनी बेटी का ब्याह एक बूढ़े व्यक्ति से कर देता है। यह चरित्र समाज में व्याप्त लालची मनोवृत्ति का प्रतीक है। 'चरनदास चोर' नाटक हबीब तनवीर की सबसे सफलतम प्रस्तुतियों में से एक है। इस नाटक का नायक चरनदास एक चोर है। चोर किस तरह समाज में अपनी प्रतिष्ठा तथा सत्य की स्थापना के लिए अपनी मृत्यु तक को वरण करता है, यह इस चरित्र के माध्यम से उजागर होता है।

'बहादुर कलारिन' नाटक में दो प्रमुख पात्र हैं, एक छछान और दूसरी बहादुर। छछान समाज में व्याप्त औरत को भोग्या समझने वाले कुत्सित मानसिकता का प्रतीक है, तो बहादुर नामक महिला चरित्र स्त्री की मान-मर्यादा की रक्षा करने के उपक्रम में अपने बेटे के प्रति ममत्व-भाव तक का गला घोंट देती है। 'सोनसागर' नाटक में लोरिक और चन्दा की प्रेममयी गाथा समाहित है।

7- हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि, श्रीमती गिरजा सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1970, पृ.सं.-256-257

हबीब तनवीर ने इस प्रेमगाथा में लोरिक को एक नेता के चरित्र की तरह पेश किया है, वहीं दूसरी ओर चन्दा को एक सशक्त इरादों वाली स्त्री के रूप में।

हबीब तनवीर ने 'हिरमा की अमर कहानी' में महाराज हिरमादेव तथा कलैक्टर नामक दो पात्रों के माध्यम से सामन्तवाद और लोकतंत्र का अन्तर्विरोध दिखाया है। दोनों पात्र अपने अपने चरित्र को बखूबी उजागर करते हैं। हिरमादेव ने सामान्य जनता की आस्था व श्रद्धा का दुरूपयोग किया, वहीं कलैक्टर के चरित्र के माध्यम से नौकरशाही के दांव-पेंच को यहां प्रस्तुत किया गया है। 'देख रहे हैं नैन' का मुख्य पात्र विराट है, जो अनजाने में हुई चूक या गलती को सहन नहीं कर पाता। वह आत्मग्लानि से पीड़ित है, जिसके कारण वह बार बार अपने पथ से विचलित होता है और अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है।

'एक औरत हिपेशिया भी थी' की महिला पात्र हिपेशिया इस नाटक की नायिका है, जो राजनैतिक शोषण व दमन चक्र के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करती है। 'वेणी संहार' नाटक में द्रोपदी मुख्य चरित्र के रूप में सामने आती है। किन्तु वह शोषण व दमन के विरूद्ध आवाज बुलन्द नहीं करती, बल्कि प्रतिशोध की आग में जलती हुई विध्वंस की मानसिकता का परिचय देती है। 'पोंगा पंडित' नाटक की प्रमुख पात्र जमादारिन है। पहले यह नाटक जमादारिन नाम से मंचित होता था। इस नाटक में जमादारिन के चरित्र के माध्यम से समाजिक वर्ग-विभेद की स्थितियों से उत्पन्न कुरीतियों को खत्म करने का प्रयास किया गया है।

हबीब तनवीर के नाटकों के मुख्य पात्र के अलावा अन्य पात्र भी प्रासंगिक हैं, जो नाटकों की गतिशीलता बनाए रखने में अपने-अपने किरदारों का वहन करते हैं। नाटक के कथानक को स्पष्ट करने में ये पात्र अपनी महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। इस तरह हबीब तनवीर अपने नाटकों में चरित्रों की जो उद्‌भावना करते हैं, वह अपने कार्य-व्यापार द्वारा लोगों पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। और यही वजह है कि हबीब तनवीर के नाटक ज्यादा लोकप्रिय और चर्चित हुए हैं।

संवादों की नाटकीयता

भारतीय आचार्यों ने वस्तु तत्व के रूप में संवादों के महत्व को प्रतिपादित किया है, परन्तु अरस्तू ने इसकी चर्चा नहीं की है। उन्होंने विचार तत्व के संबंध में कहा है कि "इसके अन्तर्गत ऐसा प्रत्येक प्रभाव आ जाता है, जो वाणी से उत्पन्न होता हो। इसके उप-विभाग हैं - प्रमाण और प्रतिवाद, करुणा, त्रास, क्रोध आदि भावों की उद्‌बुद्धि, अतिमूल्यन और अवमूल्यन।"[8] संभवतः संवाद को इसी विचार तत्व के अंतर्गत समाहित करनेवाला कार्य अरस्तू ने किया है। यहां अरस्तू का अभिप्राय पात्रों के विचारों से है। रोनाल्ड पीकॉक ने अपनी पुस्तक में कहा है कि "कथन या भाषण, कार्य-व्यापार, कथावस्तु तनावों का एजेंट है। कथन पात्रों के संबंधियों और उनकी भावनाओं के विकास एवं परिवर्तनशीलता की लगातार गति को प्रकट करने की सक्रिय भाषा है। बाह्य कार्य-व्यापार तथा उद्देश्य दोनों को भाषा या कथन स्पष्ट बनाता है।"[9]

संवादों की अपनी विशेषता होती है जिनके द्वारा यह कार्य व्यापार को अग्रसर करने में, चरित्रों को विकसित करने में सफल होता पाया गया है। संवाद कथा को गतिशील बनाता है। संवाद के द्वारा कथा को विकास मिलता है और यह विकास धीरे धीरे अग्रसर होता हुआ एक निश्चित सीमा पर खत्म होता है, जब रचनाकार का स्व सुंदर, आकर्षक, बुद्धियुक्त, व्यंग्य करने की ह्राक्ति युक्त मथा मनोहर हो। संवाद में नाटकीयता लाने के लिए आकर्षण, सौकुमार्य, बुद्धिमत्ता, और व्यंग्य का प्रयोग किया जाता हे। संवाद की नाटकीयता ही किसी नाटक को सफल बनाती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि संवाद का संवेगाात्मक महत्व, चरित्र-चित्रण की स्वाभाविक भावनाएं, पात्रों के द्वारा घटनाओं को बताने की क्षमता के साथ ही सौंदर्यपूर्ण, बुद्धिमत्तापूर्ण एवं व्यंग्यपूर्ण संवाद गढ़ने का गुण नाटककार में होना चाहिए। जिसमें भावों को वहन करने वाली भाषा का ज्ञान नाटककार को होना चाहिए।

हबीब तनवीर ने अपने लोक नाटकों में मूलतः छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रयोग किया है। जब उन्होंने अपनी मातृभाषा में नाटकों का मंचन किया तो वे ज्यादा सफल भी हुए, क्योंकि नाअक की भाषा उनकी निजी अनुभूति की भाषा थी। उन्होंने वहां की लोक-परंपरा को भी सूक्ष्मता से ग्रहण किया था। उनके नाटकों

8- अरस्तू का काव्यशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र, भारती भंडार, इलाहाबाद, संस्करण संवत 2014, पृ.सं.51

9- द आर्ट ऑफ ड्रामा, रोनाल्ड पीकॉक, रूटलेट ऐंड के. गलपाल, लंदन, संस्करण 1957, पृ.सं.168

की कथावस्तु सामाजिक परिस्थितियों, तत्कालीन राजनैतिक अवस्थाओं, सांस्कृतिक संघर्षों तथा अस्मिता की रक्षा की भावना से ओत-प्रोत थी। उन्होंने सामाजिक समस्याओं, विडंबनाओं व स्थितियों को बहुत ही बारीकी और व्यंग्यपूर्ण लहजे में अपने नाटकों के संवाद में पिरोया है। 'पोंगा पंडित' का यह संवाद प्रासंगिक है-

''पंडित - जो है सो कलजुग के विषय में छोटे-छोटे बच्चे लोग खिल्ली उड़ाते हैं।

भकला - किसके घर के बच्चे हैं महाराज मुझे बताव तो, एक मुटका लगाऊंगा उसको।

पंडित - जो है सो कलजुग के विषय में स्नान ध्यान के मारे पूरे शरीर घुल घुल के पतरे होते जा रहे हैं बेटा।

भकला - हफ्ता में एक बार नहाना चाहिए।

पंडित - अब देखो ना, भला ना करे पूजा पाठ, ना करे कभू दान, भूखन मरे पोंगवा पंडित, देखो आज काल का ज्ञान।

भकला - देखे भगवान, जो देते हैं उसी को करें बदनाम। हे भगवान, गरीब के साथी, जिसको कभी जूता नहीं मिले उसको चढ़ाते हैं हाथी। क्या अमीर क्या गरीब, एक पूत बिना तरस रहे हैं सबके नसीब। और इधर देखो तो ये हाल है, जय हो, महाराज की जय हो।''[10]

यहां हम पाते हैं कि पंडितजी कलयुग के बारे में सोच-सोचकर दुबले होते जा रहे हैं। इस पर भकला व्यंग्य करता है कि हफ्ता में अगर एक बार नहाएंगे तो दुबले नहीं होंगे। प्रत्यक्ष चित्रण में एक पात्र दूसरे पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को अपने संवादों के माध्यम से वर्णित करता है या फिर पात्रों के वार्तालाप को सुनकर हम उनके चरित्र का अनुमान लगा लेते हैं। समाज के बाह्याडंबरों, पाखंडों आदि का वर्णन वार्तालाप की शैली में किया जाता है। पाखंडी पंडित का धन के प्रति आकर्षण को बहुत ही नाटकीय तरीके से इन संवादों में प्रस्तुत किया गया है-

''जमादारीन - हमको भी आरती दो न महाराज।

पंडित - हट तेरे नीच कहीं के बड़ी आई आरती लेने वाली।

जमादारीन - मैं आरती में पैसा चढ़ाऊंगी न महाराज।

पंडित - देखो बेटा, आरती में पैसा चढ़ाऊंगी कह रही है।

10- पोंगा पंडित और हबीब तनवीर, वसुधा-62 की अनुषंग पुस्तिका, संपादक-कमला प्रसाद, पृ.सं.23

भकला - अरे सुनो महाराज, सुनो।

पंडित - क्या है?

भकला - महाराज वो जमादारीन है।

पंडित - पैसा में कुछ नहीं होता है, चढ़ा दे बेटी, चढ़ा दे। चढ़ा दे। हट तेरे नीच कहीं के। न तो इसमें चढ़ा रही न दे रही है। घेरी बेरी मेरे दिल को ललचा रही है।

जमादारीन - आरती बीच में है महाराज नोट जल जाएगा।

पंडित - अच्छा हम हटा देते हैं, छोड़ दे छोड़ दे...।

भकला - ये लो महाराज।

पंडित - जय हो जय हो गोपाल की जय हो।

भकला - हूंऽऽ देखो कैसे दिखा रहे थे गुस्सा और लात, चमका जब दस का नोट तो घुसड़ गया जात और पात।''[11]

जमींदार किस तरह किसान का शोषण करता है, 'चरनदास चोर' की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

किसान - (चरनदास को पहचानकर) तुम? फिर लूटने चले आये? ले जाओ। बस, ये लंगोटी बची है, ले जाओ। और नहीं तो मेरा गला घोंट दो।

चरनदास - अरे क्या हुआ? कुछ फूटेगा।

किसान - गांव में जबरदस्त अकाल पड़ा है। कितने गरीब तड़प-तड़प कर मर गये। दूसरों की क्या कहूं भैया। तीन दिन हो गये बच्चों को रोटी का टुकड़ा नहीं मिला है।

चरनदास - अरे राम राम!

किसान - इस गांव में बहुत बड़ा मालगुजार है, जिसकी दस गांव में खेती है भैया। उसके यहां कुंआ, पम्प, बिजली सब लगा है। और जगह-जगह धान उग रहा है। लेकिन मजाल है कि वो किसी गरीब को आधा किलो दे दे। गोदाम के पास अगर कोई जाए तो उसके पहलवान लाठी मार-मार के कचूमर निकाल दें।

चरनदास - ऐसा अत्याचारी!''[12]

11- पोंगा पंडित और हबीब तनवीर, वसुधा-62 की अनुषंग पुस्तिका, संपादक-कमला प्रसाद, पृ.सं.23

12- चरनदास चोर, हबीब तनवीर, पुस्तकायन, नई दिल्ली, संस्करण 1997, पृ.सं.46

'बहादुर कलारिन' में काम वासना का बहुत ही भावप्रवण तरीके से चित्रण किया गया है। इस नाटक में बेटा अपनी मां पर ही आसक्त है। इसे संवाद के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

बहादुर - फेर अप्सरा बिहा के लाव तब तोला सुख मिलही। सब गांव भर के टूरी ला बहु बना के आज नाक कटा के बइठे हव। कइसे बेटा (हाथ रखती है। छछान हाथ झटक देता है) तोला का बात सताथे छदान, ते का खोजथस बेटा!

छछान - तें मोला बेटा झन का!

बहादुर - अइसन नइ गोठियाव छछान, मोर मुन्ना!

छछान - (बहादुर से लिपटकर रोता है) मोर सुख के दिन बितगे, मोला अऊ दुनिया मे सुख नइ मिलय... तेला मैं जानगेव! मोर खुसी के दिन मोर पहिली-पहिली सादी के दिन खतम होगे, मोला अपन बचपन के सुरता आथे जब मोला अपन हाथ मे खवात रेहे! वो आनंद अब मोला कभू नइ मिले! कोन जनी मोला का होगे हे, मैं तोर से नइ गोठिया सकंब!

बहादुर - मोला नइ बतावे, ले बता, तोर आकाश के तारा तोड़ के लाव का बेटा!

छछान - अनेक औरत मैं बिहावेब, फेर दुनिया भर में तोर असन औरत नइ देखेंब!

बहादुर - मोर असन औरत नइ देखे!

छछान - तोर से दूर नइ रही सकब, ले मैं कहि डरेब!

बहादुर - बने सोचके गोठिया थस!

छछान - मैं सब सोच डरेब!

बहादुर - तै बइहागेहस का छछान!

छछान - हौव!''[13]

हबीब तनवीर के अन्य नाटकों में भी संवादों की संप्रेषणीयता इसी तरह से नियोजित है और इस नाटकीय अंदाज में कही गई है कि दर्शकों पर उसका प्रभाव अपना अमिट छाप छोड़ जाता है। इस प्रकार हबीब तनवीर अपने नाटकों में लोक परंपराओं को अनुस्यूत करते हुए समय और समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों से मुठभेड़ करते दिखते हैं।

13- बहादुर कलारिन, हबीब तनवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ.सं.81

गीतों का प्रयोजन

नाटक में गीतों की परंपरा भारत तथा यूनान में प्राचीन काल से ही देखने को मिलती है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में सामवेद से गीत ग्रहण करने की चर्चा की है। भरत तथा उसके परवर्ती आचार्यों ने भी नाटक में गीतों का प्रयोग आवश्यक माना है। वहीं अरस्तू ने भी नाटक के छह तत्वों में संगीत को आवश्यक बताया है तथा अलंकरण के प्रसाधनों में गीतों को प्रमुख सीन दिया है। पाश्चात्य नाटकों में आरंभ में कोरस रखने का विधान है जिसे लोग सहगान के रूप में गाते हैं।

प्रारंभिक काल से ही हिन्दी के नाटकों में गीतों का प्रचलन रहा है। भारतेंदु ने तो अपने नाटक में गीतों के माध्यम से भारतीय इतिहास की रूपरेखा ही प्रस्तुत कर दी है। नाटकों में गीतों के समावेश के द्वारा गंभीर वातावरण को भी सहज बनाकर घटना का प्रवाह बनाए रखा जाता है ताकि आनंदोद्रेक में कोई व्यवधान पैदा न हो और रस का संचार होता रहे। जयशंकर प्रसाद ने भी अपने नाटकों में गीतों का समावेश कर मानवीय भावनाओं की मार्मिकता को उद्‌घाटित किया।

जिस तरह संगीत में रागों के थाट खड़े होते हैं, उसी तरह हबीब तनवीर के गीत नाटकों में एक विकसित, सिलसिलेवार, सांस्कृतिक समृद्धि उसके गुणवत्ता भरे वैज्ञानिक व्याकरण का आभास कराते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में लोकगीतों तथा लोकसंगीतों का सम्मिश्रण किया। सदैव से ही लोकगीत मनोरंजन के साथ-साथ जन-जागरण का काम भी करती रही है। हबीब तनवीर ने एक बेहतर समाज और मानवीय मूल्यों की स्थापना के अपने उद्देश्य को अधिक प्रभावी तरीके से प्रस्तुत करने के लिए अपने नाटकों में गीतों का समावेश किया।

'आगरा बाजार' में बाजार में होने वाले एक लड़ाई-झगड़े का दृश्य है। हबीब तनवीर ने एक फकीर के माध्यम से वहां जो गीत का नियोजन किया है, वह तात्कालिक स्थिति को पूरी यथार्थता के साथ उद्‌घाटित करता है-

"मुफलिस की कुछ नजर नहीं रहती है आन पर
देता है वह अपनी जान एक-एक नान पर
हर आन टूट पड़ता है रोटी के ख्वान पर
जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं एक अस्तख्वान पर
वैसा ही मुफलिसों को लड़ाती है मुफलिसी
यह दुख वह जाने जिस पे आती है मुफलिसी

जो अहले-फजल आलिमो फाजिल कहाते हैं
मुफलिस हुए तो कलमा तलक भूल जाते हैं
पूछे कोई 'अलिफ' तो उसे 'बे' बताते हैं''[14]

'देख रहे हैं नैन' में जब राजा निराश हो जाता है तो उसे 'विराट' में आशा की एक किरण दिखती है-

''आस का दामन छूट गया
राजा का दिल टूट गया
हंस गए सेना भी गई
रही-सही आशा भी गई
भागे फौजों के जत्थे
चम्पत राय भी चम्पत थे
जब उड़-उड़ ध्रुवन गगन में छागे, बरगे सुरूज के जोत
तोर जोत महामायी बरगे सुरूज के जोत
एक विराट से आशा थी
आशा थी मर्यादा थी
सब मित्रों से भर पाया
राजा विराट के घर आया।''[15]

संसारिक जीवन में 'जर, जोरू और जमीन' विवाद का मुख्य कारण बनती रही हैं। इस तथ्य को हबीब तनवीर ने अपने नाटक 'बहादुर कलारिन' में इस गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

''दुनिया में दू झगरा हे भाई खेती अऊ नारी के
दुनिया में...
चारों युगले आवत हावै गहाही हावय इतिहास
दुनिया में...
घर बंटवारा के खातिर संगी कतको ढोइन लड़ाई
कौरव, पांडव के का गत होगे, लड़ीन भाई भाई
दुनिया में...।''[16]

सत्ता के स्वार्थ में किस तरह छोटी-छोटी बातों के लिए संघर्ष होता है, यह 'हिरमा की अमर कहानी' नाटक के गीत की इन पंक्तियों से स्पष्ट है-

---

14- आगरा बाजार, हबीब तनवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ.सं.81
15- देख रहे हैं नैन, हबीब तनवीर, पुस्तकायन, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ.सं.19
16- बहादुर कलारिन, हबीब तनवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ.सं.53

"एक अंगूठी न मिलने की खातिर
न मिलने की खातिर, न मिलने की खातिर
कि सुवना फिर गद्दी भी छीनी गई
अंगूठी पे गद्दी भी छीनी गई।"[17]

और इसी नाटक में अपने परिवेश तथा अपनी जमीन के साथ मनुष्य के गहरे जुड़ाव को इन पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है-

"यही हमारी महतारी, ये धरती इतनी प्यारी
यही हमारी महतारी...
पर्वत बन अभिमान दिखाती, बनके नदी इतराती,
सूरज को भी यहीं बुलाती, चांद का दर्पण लाती,
तारों को महफिल गरमाती, हवा का गीत सुनाती,
यही हमारी...।"[18]

17- हिरमा की अमर कहानी, हबीब तनवीर, पुस्तकायन, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ.सं.7

18- हिरमा की अमर कहानी, हबीब तनवीर, पुस्तकायन, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ.सं.40

भाषा की विशिष्टता

भाषा संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती है और इसके किसी भी समाज के अस्तित्व की पहचान बनती है। मनुष्य अपने क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा, कला-साहित्य आदि अपनी भाषा के द्वारा ही प्रकट करता है। संस्कृति चाहे शिष्ट समाज की हो या लोक समाज की, अपने प्रकटीकरण के लिए वह भाषा का ही सहारा लेती है। भाषा सिर्फ प्रकटीकरण का एक माध्यम भर नहीं है, बल्कि वह संस्कृति को प्रभावित करनेवाला एक प्रमुख तत्व है। वहीं संस्कृति भी भाषा पर प्रभाव डालती है। भाषा का बोली से गहरा संबंध है। बोली ही भाषा की ताकत है। वह साहित्य ज्यादा सरस, सहज, भाव-व्यंजक और स्वाभाविक नहीं हो सकता, जिसका संबंध बोली से नहीं है। कारण यह है कि किसी भी बोली का उत्स लोक की परंपरा और उसकी जीवंत संस्कृति होती है।

अरस्तू ने 'पोयटिक्स' में ट्रैजेडी पर विचार करते हुए लिखा है कि ''त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न रूप के प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है। ...अलंकृत भाषा से मेरा अभिप्राय ऐसी भाषा से है जिसमें लय, सामंजस्य और गीत का समावेश हो जाता है। ... जहां कार्य की गति रुक जाए और विचार या चरित्र का अभिव्यंजन न ही, वहां भाषा अलंकृत होनी चाहिए। इसके विपरीत अत्यधिक कान्तिमयी पदावली चरित्र और विचार को ही आच्छन्न कर लेती है।''[19]

नाटक की भाषा पर विचार करते हुए भारत रत्न भार्गव कहते हैं कि ''अभिनेता जब तक उस चरित्र विशेष द्वारा बोली जानेवाली भाषा के मंतव्यों और उसके पीछे छिपे गहरे अर्थों को पूरी क्षमता के साथ पकड़ नहीं लेगा, तब तक उस चरित्र की आंतरिक सत्यता को उजागर करने में सफल नहीं हो सकता। स्तानिस्लाव्स्की अपनी पुस्तक 'एन एक्टर प्रिपेयर्स' में इस बात की विशद व्याख्या करते हैं कि अभिनेता द्वारा बोली जानेवाली भाषा का उच्चारण यदि चरित्र की विशेषताओं को रेखांकित नहीं कर सकता तो चरित्र की आन्तरिकता से उसका रिश्ता नहीं बन सकेगा। चरित्र का सामाजिक वर्ग, उसकी

19- अरस्तू का काव्यशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र तथा महेन्द्र चतुर्वेदी, भारती भं., इलाहाबाद, संस्करण संवत् 2014, पृ.सं.19 और 66

शैक्षणिक पृष्ठभूमि, मानसिक स्थिति, तात्कालिक परिस्थिति, अन्य चरित्रों से उसका आंतरिक संबंध आदि चरित्र की अनेकानेक अवस्थाएं उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा से ही व्यक्त होगी। अभिनेता की भंगिमाएं और मुद्राएं उन शब्दों के अर्थों को अधिक सार्थक और संपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध होती है।''[20]

भाषा के संबंध में हबीब तनवीर कहते हैं कि ''भाषा में बोली की सहज प्रवाहमयता और ग्रहणशीलता जरूर होनी चाहिए। भाषा की रवानगी जीवंत हो, विचारप्रद हो तो वह सीधे भीतर तक उतरती चली जाती है। लैंग्वेज की जो सेंस होती है, उसमें सहजता और सादगी होनी चाहिए।''[21] हबीब तनवीर 'मिट्टी की गाड़ी' की प्रस्तुति से पहले अपने घर रायगढ़ (छत्तीसगढ़) गए। वहां उन्होंने नाचा का प्रदर्शन देखा और फिर निश्चय किया कि अपनी लोकभाषा में ही नाटक का मंचन करेंगे। नाचा के प्रदर्शन के दौरान उन्होंने लोकभाषा की शक्ति को पहचान लिया था। उनका मानना था कि ''अभिनेता स्वयं की भाषा के शब्दों और उसके अंतर्निहित अर्थों और नाटक के अंतर्पाठ को जितने सहज और स्वाभाविक तरीके से अपनी भाषा में प्रस्तुत कर सकता है, वह अन्यथा संभव नहीं है।''[22]

हबीब तनवीर इस तथ्य से पूरी तरह विज्ञ हो चुके थे कि सफल प्रस्तुति के लिए भाषा पर अच्छी पकड़ जरूरी है। 1954 में 'आगरा बाजार' की प्रस्तुति दिल्ली में होनी थी। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि ''आगरा बाजार में नजीर अकबराबादी के बारे में लिखते हुए मैंने दिल्ली के एक लेखक मिर्जा फरहतल्लाह बेग से दिल्ली की जुबान में लिखी हुई सामग्री को देखा और या अहमदशाह बुखारी जैसे लेखक को जिन्होंने दिल्ली की गलियां लिखी, कितनी खुबसूरत जुबान। ...और दिल्ली की आवाजें, सामान बेचनेवाले, कटोरा बजानेवाले, जीरापानी बेचनेवाले, उन सबकी पुकारें बड़ी संगीतात्मक है। एक किताब है, दिल्ली की आवाजें। आप पुरानी दिल्ली जाएं और इस जुबान को सुनें। आगरा बाजार में वह सब समाहित हो गया है जो मैंने उस वक्त लोकभाषा के रूप में सुना, इसलिए उसमें इतना प्रबल ओज है।''[23]

अपने एक साक्षात्कार में हबीब तनवीर कहते हैं कि ''असल में मैंने यह देखा कि अपनी पूरी शक्ति से मेरे अभिनेता गांव में अपनी मातृभाषा छत्तीसगढ़

20- कलावार्ता, संपादक-कमला प्रसाद, अंक103, पृ.सं.156-157

21- सापेक्ष, संपादक-महावीर अग्रवाल, अंक जनवरी 2004- दिसंबर 2006, पृ.सं.49

22- कलावार्ता, संपादक-कमला प्रसाद, अंक 103, पृ.सं. 159

23- लाइफ इन थियेटर, हबीब तनवीर, कलावार्ता, संपादक-कमला प्रसाद, अंक 103, पृ.सं.18

बोल रहे हैं और नाचा कर रहे हैं। मैं नाचा के इन कलाकारों को जब दिल्ली लेकर आया तो मुझे समझ में नहीं आया कि ये लोग मरे-मरे से क्यूं हो गये हैं। इन लोगों को डांटता था और अपने बाल नोंचता रहता था। तीन साल इसमें बीत गए। फिर मैंने महसूस किया कि मातृभाषा के महत्व को नहीं भूलना चाहिए। उसी में इन अभिनेताओं की शक्ति है। फिर छत्तीसगढ़ी में नाटक को आजमा के देखा तो मेरे कानों को बहुत अच्छा लगता था पर फिर भी दर्शक बहुत कम आते थे। सन् १९७३ तक यही चलता रहा। पर सन् १९७३ में हमको वो भाषा मिल गई, जो रंगकर्म की भाषा थी। उस भाषा के बल पर बॉडी लैंग्वेज, साउंड और रंगकर्म के हरेक चीज ठीक होने लगे।''[24]

24- लाइफ इन थियेटर, हबीब तनवीर, कलावार्ता, संपादक-कमला प्रसाद, अंक 103, पृ.सं.18